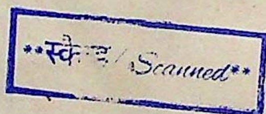
प्रणय-गीत



प्रणेता
शिवचन्द्र नागर


स्कैन्ड/ Scanned

प्रकाशक—
शिवचन्द्र नागर
गुजराती स्ट्रीट,
मुरादाबाद.

विक्रेता
मानसरोवर साहित्य-निकेतन,
मुरादाबाद.

मूल्य, आठ आना

मुद्रक—
एस. डी. शर्मा
सरस्वती-प्रेस,
मुरादाबाद.

बचपन में जो मुझे अपने पास बिठाकर, देव-वाणी के श्लोक रटाया करते थे।

पूजा की लिपी-पुती क्यारी के किनारे मैं चुपचाप बैठा हुआ जिनकी पूजा को पागल-सा देखता रहता था, केवल बाल मुकुन्द जी के भोग की लालसा से—

जिनके वात्सल्य प्लावित हृदय का दुलार और बूढ़े हाथों का स्नेह भरा स्पर्श मैं चौदह वर्ष तक पा सका—

जिनके अभाव ने सर्व प्रथम मेरे हृदय का एक कोना चटका दिया—

और जिनकी स्मृति ने प्रथम बार मेरी पलकों को आर्द्र किया—

उन्हीं

अपने पूज्य पितृव्य

स्वर्गीय पण्डित देवीचन्द्र जी व्यास

की

पुण्य-स्मृति में

आँसुओं से निर्मित, करुणा स्मारक

प्रणय - गीत

आलोचना

कवि के हृदय में मार्मिक अनुभूतियाँ सदैव छिपी-सी रहती हैं जो संसार में अनेक वस्तुओं, से प्रतिक्रिया स्वरूप जनित होती हैं। कवि का निरीक्षण साधारण मनुष्यों से कहीं अधिक होता है, बस जभी भावोच्छ्वास उठने लगते हैं, तभी वह अपनी अनुभूतियों का प्राकृतिक उपादानों तथा अन्यान्य वस्तुओं से सामञ्जस्य घटाता, व्यक्त करता जाता है और इस प्रकार से 'जीवन' और 'कला' का एक अद्भुत सुन्दर सम्मेलन हो जाता है। यही 'गद्य-गीतों' की उत्पत्ति का इतिहास भी हो सकता है।

प्रस्तुत आलोचना का विषय 'प्रणय-गीत' है। कवि के निजी जीवन में और कविता के जीवन में यौवन के सन्देश को सुनाने वाला पिक 'कुहू' कर उठा है, यौवन समारम्भ होजाता है। प्रेम सभी अवस्थाओं में किसी न किसी स्वरूप में रहता है, परन्तु युवाकाल का प्रेम अपनी एक भिन्न ही विशेषता रखता

विषय - सूचि

शुद्धि-पत्र

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
!	?	१४	६
कहीं	नहीं	१६	४
ज्योत्सना	ज्योत्स्ना	१७	२
वुलार	दुलार	२५	१
भुजायें । शून्य	भुजायें शून्य	३५	५

अपनी बात

जब मैं जीवन के संघर्ष से शान्ति पाता हूँ तो कुछ सोचने लगता हूँ ।

जब समय पाता हूँ तो किसी उलझन को सुलझाने लगता हूँ किन्तु जीवन एक ऐसी उलझन है जिसे कोई भी आज तक नहीं सुलझा पाया ।

जीवन सरिता निरन्तर सुख, दुख, आशा निराशा और स्मृति विस्मृति के युग कूलों को छूती हुई बहती रहती है । मानस अनुभूतियों के कमल उसमें सदैव खिला करते हैं ।

उन्हीं कोमल कमलों की माला मैं अपने पाठकों के हाथ में भेंट कर रहा हूँ ।

वे गद्गद् हृदय की अनुभूतियाँ हैं या खारे सागर की लहरें, यह मैं नहीं जानता ।

ग्वालियर लॉज
गुजराती स्ट्रीट
मुरादाबाद

—नागर

उषा

निशीथ की निस्तब्धता में कोई चुपचाप आकर अपने कोमल हाथों में तूलिका ले कुछ रङ्गीन चित्र बना जाता है।

साक़ी बनकर इन नयनों में स्वप्निल मदिरा भर जाता है।

पलकों में कल्पना का संसार बसा जाता है।

किंतु, उषा पल भर में स्वप्न संसार को अपने गुलाबी चरणों से कुचल कर, चित्रों को कोमल अंगुलियों से मिटा कर अपने निर्मम हाथों से चषक को लुढ़ा देती है यदि मैं पूछता हूँ "ऐसा क्यों"

उत्तर में केवल एक गुलाबी हँसीपाता हूँ।

* * *

विवशता

पक्षी ! अपना कलरव शून्य में मत बिखेर, स्वर्ण विहान का आगमन देखकर नीड़ में पंख मत फड़फड़ा । अपने बच्चों की बलैया न ले अपनी दृष्टि को शून्य में मत माप।

तेरा पथ अनन्त है।

आशा निराशा के पंखों से कामना के वायु-मण्डल में मत भूल ।

सूर्योदय से पहले ही तुझे, फूलों का, वन का कलियों का, उपवन का मोह त्याग, जाना ही पड़ेगा।

प्रभात

अज्ञानाकाश के नीलिमाञ्चल से वासना तारिकायें खिसक गई हैं।

प्राची से स्वर्णिम उषा का मृदुल चुम्बन पा कलियाँ चिटख रही हैं, फूल खिल रहे हैं।

ज्ञानोदय की प्रथम रश्मि का आह्वान पा आज प्राण विहग आनन्दोन्मत्त हो कर नाच रहा है, गा रहा है।

'आज मेरे जीवन का स्वर्ण प्रभात है, स्वर्ण विहान है।'

* * *

प्रेम

शैशव के शान्त सरोवर में जब लहरों का आभास होने लगता है।

सौंदर्य के सुख स्वप्न पलकों में विचरने लगते हैं।

किसी का मन्द मन्द पद संचालन हृदय को गुदगुदाने लगता है।

विवेक पर मनोविकारों की विजय होती है।

किसी की प्रतीक्षा में नयन खुले रहते हैं।

प्रेम ! तुम उन्हीं लहरों की सिहरन हो, उन्हीं स्वप्नों की तूलिका हो, उन्हीं मनोविकारों की छाया हो और उसी प्रतीक्षा की भूमिका।

* * *

सर्वस्व

तुम उषा की वह स्वर्ण किरण हो जो कमल को दुलार करती हो फूलों को प्यार करती हो।

तुम शरद ऋतु की वह धवल ज्योत्स्ना हो जो नीरव प्रकृति को दूध में निल्हाया करती हो।

सजनि! फिर भला मैं कैसे भूल सकता हूँ।

जब तुम मेरे जीवन की धूप हो, छाँह हो, उजेला हो, अँधेरा हो, अमा हो, राका हो।

* * *

अपनापन

जब तुम गृहद्वार पर उदास सी प्रतीक्षा में नयन बिछाये बैठी रहती हो और मैं दिन भर का थका माँदा संध्या को लौटता हूँ तो मुझे देख कर तुम्हारी हृदय कलिका खिल उठती है।

तुम मेरे लिये दिन भर भूखी रहती हो।

देवि ! इस ममता का क्या रहस्य है ! मुस्करा कर उत्तर मिला "अपनापन"।

* * *

अभिलाषा

प्रभात की अरुण रश्मियाँ अपने मृदुल चुम्बन से जब कलिका को फूल में परिवर्तित कर देती हैं तब उसके परिमल को कौन प्यार नहीं करता ?

जब अपने रङ्गीन परों से तितलियाँ उपवन के सुरभित वातावरण में पैरती रहती हैं तब किसकी शैशव भावनायें उनका पीछा नहीं करतीं ?

जब फूल अपनी सुरभि वायु में वितरित करते रहते हैं तब उस वायु को कौन नहीं सूंघना चाहता ?

देवि ! इसीलिए मैं चाहता हूँ, फूलों सा मन, परिमल से भाव औ' तितली सा जीवन।

* * *

आकांक्षा

तुमने कभी वह छोटी छोटी लहरें देखी होंगी जो वायु की मातुल थपकियों से सरिता के धरातल पर नाचती रहती हैं किन्तु वे सरिता का किनारा कहीं तोड़तीं।

तुमने वह मन्द मन्द मलयानिल भी देखा होगा ज़ो कलियों को खिलाता है किन्तु उनके किंजल्क जाल को नहीं, बखेरता।

तुमने सावन की वह भीनी भीनी फुहारें भी देखी होंगी जिनका प्रत्येक पौधा उचक उचक कर स्वागत करता है।

सजनि! मैं वही छोटी छोटी लहरों सा, मलयानिल सा, सावन की भीनी भीनी फुहारों सा आवेश रहित प्रेम चाहता हूँ।

* * *

चाह

तुम कुसुम सी सुन्दर हो, हीरक सी कठोर हो, ज्योत्सना सी शीतल हो, विद्युत सी चंचल हो, नीहारिका सी दूर हो।

किन्तु तुम्हारे यौवन की चमक अणु अणु में व्याप्त है।

सुन्दरि! मैं तुम्हारा नग्न सौंदर्य देखना चाहता हूँ। झीने आँचल से कलियों सी मुस्कराओ मत, फूलों सी हँसो मत, मेरे और अपने बीच का अवगुंठन उतार फेंको, केवल मेरी इतनी ही चाह है।

* * *

मैं और तुम

जब मैं तुम्हारे पास को बढ़ता हूँ, तुम दूर को खिंच जाती हो।

जब मैं तुम्हारा शतदल यौवन छूना चाहता हूँ, तुम छुई मुई को तरह अपना यौवन समेट लेती हो।

जब मैं तुम्हारी ओर आँखें भर कर देखता हूँ तो तुम अपना सिर झुका लेती हो।

सजनि! मैं अपने अस्तित्व को तुम में मिटा देना चाहता हूँ अतः आओ वहाँ चलें जहाँ "मैं" "तुम" का भेद न हो।

* * *

बन्दी

प्रिय ! तुम वन्दी हो, वन्दी ! किंतु तुम तो चाँद में मुस्करा रहे हो, फूलों में हँस रहे हो, पवन में तुम्हारा सुरभित निश्वास है, जो मेरी जीवन सरिता को बार बार तरंगित कर लहरों को जगा जगा कर सुलाता रहता है।

प्रिय ! तुम वन्दी हो, मेरे जीवन में, मेरे नयनों में, पलकों में, प्राणों म, लहरों में, गानों में अच्छा होता यदि मैं वन्दी-गृह होतो।

* * *

मैं और तुम

जब मैं तुम्हारे पास को बढ़ता हूँ, तुम दूर को खिच जाती हो।

जब मैं तुम्हारा शतदल यौवन छूना चाहता हूँ, तुम छुई मुई की तरह अपना यौवन समेट लेती हो।

जब मैं तुम्हारी ओर आँखें भर कर देखता हूँ तो तुम अपना सिर झुका लेती हो।

सजनि! मैं अपने अस्तित्व को तुम में मिटा देना चाहता हूँ अतः आओ वहाँ चलें जहाँ "मैं" "तुम" का भेद न हो।

* * *

बन्दी

प्रिय ! तुम बन्दी हो, बन्दी ! किंतु तुम तो चाँद में मुस्करा रहे हो, फूलों में हँस रहे हो, पवन में तुम्हारा सुरभित निश्वास है, जो मेरी जीवन सरिता को बार बार तरंगित कर लहरों को जगा जगा कर सुलाता रहता है।

प्रिय ! तुम बन्दी हो, मेरे जीवन में, मेरे नयनों में, पलकों में, प्राणों में, लहरों में, गानों में अच्छा होता यदि मैं बन्दी-गृह होता।

* * *

प्रियतम

प्रियतम जब रात्रि में चाँद और तारे अपना प्रकाश जगती पर उँढेल देते हैं, संसार प्रगाढ़ निद्रा में डूब जाता है।

तब, मैं तुम्हारे स्वागत को आँखें बिछा देती हूँ, मन्दिर का दीप जला देती हूँ। किंतु तुम नहीं आते।

एक दिन जब अमा की अंध तमस संध्या विश्व को काली साड़ी से ढाँप देती है तो तुम एक कोने में, तम की लहरों में उलझे दीखते हो।

अहा ! भूली। प्रियतम तुम प्रिय तम हो न।

* * *

आत्मदान

शलभ अपने को देकर दीपक से क्या चाहता है ?

चकोर चाँद से क्या माँगता है ?

लहरें ऊँची उठ उठ कर व्यर्थ हो क्यों विलीन हो जाती हैं !

यह आत्मदान दान की भावना कैसी अनोखी है। मैं आज तक नहीं समझ पाया कि उनके इस मर मिटने का क्या आशय है ?

* * *

परिवर्तन

मेघाच्छादित नभ पर इन्द्रधनुष की सतरङ्गी शोभा मुझे आकर्षित नहीं करती।

सारिका के गीत मुझे नहीं भाते ।

पपीहे की पुकार और क्रौंच की व्यथा मुझे व्यथित नहीं करती।

किसी का कोमल स्पर्श मुझमें रोमल स्पंदन नहीं भरता।

मनुष्य का अभाव ही उसको आकर्षित करता है।

किन्तु, मेरी आशायें रङ्गीन हैं मेरे अपने गीत हैं अपनी व्यथा है औ' अपना स्पंदन।

* * *

प्रणय समाधि

आज चंद्रिका जलधि के वक्षस्थल को चूम रही है किन्तु आज एक लहर भी नहीं उठती।

आँखों में आँसू हैं किन्तु अपांगों से एक बिंदु भी नहीं छलछलाता।

आज, जब कल्पना की भावी मिट चुकी है स्वप्नों का संसार छिन्न भिन्न हो चुका है।

आज, जब बुदबुदों के स्फटिक प्रासाद खण्डहर हो चुके हैं और अरमानों की चिता जल रही है।

आज, जब मेरे जीवन में सावन भादों की अंधेरी झुकी हुई है।

तो मैं विद्युत के प्रकाश में देख रहा हूँ कि प्रणय समाधि पर एक दीपक आज भी टिमटिमा रहा है, टिमटिमा रहा है।

* * *

अपराधी



मैं लज्जावनत अपराधी सिर झुकाये खड़ा हूँ, वास्तव में मैं अपराधी हूँ, मेरा अपराध मार्जनीय नहीं।

देवि ! मुझे कठिनतम दंड दो ताकि मैं भविष्य के लिये अपनी भूलों का परिमार्जन कर सकूँ।

किन्तु, मुझे डर है कि कहीं आप मुझे क्षमा न कर दें,

क्योंकि, मैं अपराधी क्षमा भार वहन न कर सकूँगा।

स्वार्थी

पवन तू कलिकाओं को दुलार करता है यह मैं नहीं कह सकता, क्योंकि तू अपना दुलार देकर उसका सौरभ कोष लूट लेना चाहता है।

चाटुकार भ्रमर! तू प्यार करता है यह भी मैं नहीं मानता, तू मधु का इच्छुक है परिमल का ग्राहक है।

रश्मियों! अब तुम उसे अपने मृदुल करों से सहला रही हो किन्तु तुम्हीं उसे अपने निर्मम हाथों से मसोस दोगी।

उसकी समाधि पर क्या तुम सब भी एक आँसू बहावोगे?

रश्मियों! तुम स्वार्थी हो, भ्रमर! तुम स्वार्थी हो। पवन! तुम स्वार्थी हो। मानव! तुम स्वार्थी हो।

* * *

आँसू

निशीथ के सूनेपन में जब तुम्हारी स्मृति मुझे व्याकुल बना देती है, तब चकोर नयन चन्द्रमा को देखने लगते हैं।

किन्तु, वह भी तारिकाओं से आँख-मिचौनी खेलता हुआ क्षितिज से खिसक जाता है, तब ये प्रतीक्षा में खुले रहते हैं।

धूमिल प्रभात में अरुणिमा का आभास पा सहसा आँखों से आँसू चू पड़ते हैं।

मैं नहीं जानता वे व्यथा के मोती हैं या निराशा के फूल।

* * *

मौन वेदना

शाद्वले ! सूर्योदय के साथ ही तुम अपने आँसू पलकों में बटोर लेती हो।

क्या ! इस डर से कि संसार तुम्हें रोता देखले ?

तुम अपनी हरित सुषमा पर निरन्तर पदाघात सहकर भी पीड़ा में मौन हो ।

क्या तुम्हारी मौन वेदना कोई समझ सकेगा ?

केवल वह, जिसने सीखा है पीड़ा में मौन रहना, औ' आँखों के आँसू आँखों में ही पी जाना ।

* * *

जलन

यदि किसी ने वन में दावाग्नि को जलते देखा है, चकोर को अग्नि-स्फुलिङ्ग चुगते देखा है, पत्थर से चिङ्गारियाँ निकलती देखी हैं।

यदि किसी ने आकाश से धूम्रकेतु टूटते हुए देखे हैं, कादम्बिनी अञ्चल में विद्युत को चमकते देखा है।

वही, केवल वही, मेरी जलन का आशय समझ सकता है।

* * *

वेदने !

चन्द्रिके ! सागर को मापना चाहती हो ?
विहगि ! शून्य को छूना चाहती हो ?

हृदय मापक यन्त्र सी वेदने ! तुम मेरा हृदय मापना चाहती हो ।

किन्तु, यह तुम्हारा क्षितिज को छूने का सा निष्फल प्रयास है ।

* * *

आशय

यदि किसी ने राका निशि में शरद् ज्योत्स्ना की गीली आँखों के भावों को पढ़ा है।

भगवान् भास्कर की आतप किरणों से हिमोपल गलते देखे हैं।

पवन के हलके झोंके से कुन्द कलियों को चूते देखा है।

नृत्योपरान्त कलापी को आँसू बहाते देखा है।

वही, केवल वही, मेरे आँसुओं का, हृदय का तथा भावों का आशय समझ सकता है।

* * *

सान्त्वना

"तुम सूने घर में एकाकी क्यों छिपकर रोया करते हो?"

"मैं नहीं चाहता कि कोई मेरे आँसू देखे और मुझे नीरस सान्त्वना दे, मैं जानता हूँ कि यदि वह मुझे रोता देख पायेंगे, तो उन्हें हार्दिक वेदना होगी।

मेरे छिप कर रोने रहस्य यही है कि स्वयं रोकर उन्हें रुलाना नहीं चाहता और न चाहता हूँ उनकी नीरस सान्त्वना!"

* * *

साधना

प्रेयसि ! तुम्हारे परोक्ष रहने पर तुम्हारी स्मृति हृदय को गुदगुदाया करती है समक्ष रहने पर मुझे पागल बना देती है ।

तुम्हारी हलकी सी मुस्कराहट में उन्माद है, अधरों में माधुर्य है औ' नयनों में मादकता ।

तुम्हारा उषा सा अरुणिम दुलार और संध्या सा स्वर्णिम यौवन क्या, मैं जीवन भर पा सकूँगा ?

तुम्हारे चुम्बन, तुम्हारे परिरम्भन क्या जीवन भर पा सकूँगा ?

सुन्दरि ! मेरी आँखों पर पट्टी बाँधकर तुम मुझे एक बीहड़ वन में लेजाकर छोड़ दो । जहाँ किसी का रूप मुझे आकर्षित न करे, किसी के भाग्य पर मुझे ईर्ष्या न हो, कोई मुझे प्रलोभन न दे और मैं केवल तुम्हारा ही चिरन्तन शाश्वत सौन्दर्य पा सकूँ ।

यही मेरी साधना है ।

* * *

आराधना

स्नेह और लज्जा की प्रतिमा सी तुम जब फूलों की ओट से मुस्कराती हो तब तुम्हारी रूप. रश्मियाँ मेरा हृदय-कमल खिला देती हैं ।

तुम्हारे नूपुरों की रुनझुन मेरे जीवन की मूर्च्छना है ।

शुभे ! एक वार निर्निमेष मेरी ओर जी भर कर देखलो ताकि मैं कल्पना की तूलिका से तुम्हारा सतरङ्गा चित्र बना सकूँ ।

केवल यही मेरी पूजा है और यही आराधना ।

* * *

गीत और गायक

यदि मैं तुम्हारा चाहा हुआ गीत न गा सका तो अवश्य तुम्हें पीड़ा होगी ।

यदि मैं तुम्हारी प्रिय मूर्च्छना न छेड़ सका तो तुम निराश होकर लौट जाओगी ।

मेरी स्वर-ताल शून्य आवाज़ तुम तक न पहुँच सकेगी ।

देवि ! मैं क्या गाऊँ और क्या बजाऊँ ? तुम स्वयं ही वीणा हो स्वयं ही रागनी, स्वयं ही गीत हो, स्वयं ही गायक ।

*   *   *

रहस्य

अयि अप्सरसे ! तुम्हारी कोमल पदचाप जीवन में कम्पन थी, तुम्हारी रुनझुन ताण्डव थी, प्रलय थी, तुम्हारा विलास ही सुख था, स्वर्ग था, तुम्हारे स्वर जीवन के स्वर थे।

जब लहरों सी तुम्हारी मृणाल भुजायें। शून्य में लहराती थीं, मैं चाहता था कि बुद्बुद सा बह जाऊँ।

जब तुम अपाङ्गों से तीखी नज़र फेंकती थीं तब मैं चाहता था, पलकों पर स्वप्नों सा झूलूँ।

किन्तु यह सब, अब नहीं भाता, अब तो पुतली में तुम हो, पलकों में रुनझुन, श्रुतियों में लहरें, लहरों में स्वर है।

इस रहस्य को क्या तुम समझ सकोगी ?

* * *

पागलपन



मृगछौने ! वेणु नाद सुनकर तुम शिथिल हो गये, क्यों ?

तुम तो दूर से ही मानव की छाया देख भाग जाते थे किन्तु आज क्यों नहीं भागे ?

क्या वेणु मूर्च्छना ने तुम्हें निस्पन्द बना दिया ? मरणाघात सहने के लिए तुम्हारे पाँव क्यों रुक गये ?

व्याध वेणु बजाता हुआ तुम्हारे पास तक आ गया किन्तु तुम स्थिर दृष्टि से उसकी ओर देखते रहे, तुमने व्याध के मनोभावों को नहीं पढ़ा।

उसका तीखा बाण भी तुमने चुप चाप सह लिया एक भी आह नहीं निकली।

देव ! यह सब क्या रहस्य था ?

हृदय से प्रत्युत्तर मिला "पागलपन ! पागलपन !!"

* * *

आत्मयोग

तुम मेरी वेदना में सम्वेदना न भरो, मैं अपनी करुण अनुभूतियों में सहानुभूति नहीं चाहता।

अपने मीठे प्रलोभनों से विश्वमाया सी मुझे न लुभाओ।

मुझे अपनी ही अनुभूतियों में बहने दो अपनी ही व्यथा सहने दो।

मैं अपने को स्वयं पहचानना चाहता हूँ, यही मेरा 'आत्मयोग' है।

* * *

आशंका

प्रियतम तुम्हारे चले जाने पर, तुम्हारे पद चिन्हों सी केवल वेदना रह गयी है।

स्मृतियों के स्फुलिङ्ग हृदय में विद्यमान हैं।

प्रेम-सरिता आशा और निराशा के कूलों से टकराती हुई बह रही है।

निर्निमेष नयन क्षितिज पर किसी विन्दु को देख रहे हैं, कल्पना किसी का पीछा कर रही है।

मुझे भय है तो केवल इतना कि कहीं कल्पना उन्हें छू न ले, क्षितिज से वे अदृष्ट न हो जायें, सरिता विस्मृति के मरुस्थल में न खो जाये और स्फुलिङ्ग बुझ न जायें।

* * *

स्वप्न और सत्य

मैं प्रतिदिन उषा को विलीन होते हुए देखता हूँ, स्वर्णिम सन्ध्या तम में विलीन हो जाती है।

बुद्बुदों का फेनिल हास लहरों में बह जाता जाता है। राग शून्य में खो जाते हैं, मूर्च्छना का तार टूट जाता है, तन्द्रा स्वप्नों को सँवारती है, जागृति उन्हें बखेर देती है, तमावरण में तारिकायें झिलमिलाती हैं, प्रकाश में खो जाती हैं।

यह सब मैं प्रतिदिन आँखें फाड़ फाड़ कर देखता हूँ किन्तु जागृति और सुषुप्ति, स्वप्न और सत्य का आशय नहीं समझ पाता।

* * *

फूल और मोती

शुभे ! जब मैं भिखारी भावना की झोली में अनुभूतियों को बटोर कर कुछ लिखने बैठता हूँ तभी तुम मेरी क़लम, पेन्सिल छीनकर भाग जाती हो।

तुम मुझे बार बार रुलाती रहती हो, हँसाती रहती हो।

इस क्रीड़ा में तुम्हारा क्या कौतूहल है ? क्या औत्सुक्य है ?

बहुत बार पूछने पर उत्तर मिला—

"कवि ! तुम्हारे हँसने से फूल झरते हैं और रोने से मोती।"

* * *

धरोहर

मुझे अपने ऊँचे ज्ञान की भीख न दो क्योंकि मैं इसका समोचित उपयोग न कर सकूँगा।

आज मुझे तुम्हारी सान्त्वना अपेक्षित नहीं।

आज मैं तुम्हारी सहानुभूति और समवेदना का पात्र नहीं हूँ।

आज अपनत्व का विश्वास एक भौतिक कल्पना सा प्रतीत हो रहा है।

आज मैं अपने ही हाथों से, हृदय से तुम्हारी प्रतिमा मिटा रहा हूँ।

भावनाओं के अंकुर कुचलकर, आहों के गले घोट चुका हूँ।

किन्तु रोता हूँ इसलिए कि तुम्हारा प्रेम केवल धरोहर थी, इसका विश्वास नहीं होता।

* * *

अमूल्य निधि

निशीथनी के दूसरे प्रहर में जब विश्व तन्द्रा की स्वर लहरी में बह जाता है तब मैं तुम्हारे दिए हुए उपहार की ओर पागल सा बढ़ जाता हूँ, नहीं जानता क्यों ?

उसे अपने काँपते हुए हाथों से उठाकर जब तारों की रोशनी में देखता हूँ तो रोम-रोम मुस्करा उठता है, किन्तु क्षण भर में अपाङ्गों से आँसू छलछला आते हैं, नहीं जानता, क्यों ?

प्राण तुम्हारी स्मृति में विभोर होकर छट-पटा उठते हैं।

शायद तुम्हें, मेरे रोने से दुःख होगा, वह मैं नहीं रोता केवल मेरे स्वाँसों का यातायात जीवन सरिता के किनारे, उसके इतिहास पर आँसू बहाया करता है ।

आज जब मेरे आँचल में धूल है और पलकों में मोती ।

आज जब मेरे हृदय में फूल हैं और हाथ में काँटे ।

आज, जब मैं भिखारी सब कुछ खो चुका हूँ तुम्हारा उपहार मेरी अमूल्य निधि है, अमूल्य निधि ।

* * *

विनय

हि हिमालय जो रात भर अपने हृदय पर हिमोपल रखकर किसी साधना में विलीन रहता है, प्रातः उषा के कोमल करों का मृदुल स्पर्श पा, एक नीरव सुखोल्लास से मुस्करा उठता है।

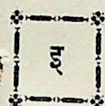
किन्तु कुछ समय बाद ही वह रोने लगता है।

तुम्हें शायद दुःख हो मेरी भी कुछ ऐसी दशा है, अतः यदि रजनी के बीत जाने पर उषा के झुरमुट में तुम मेरी झोंपड़ी में आओ तो तुम मुझसे न मिलना !

यह मेरी एक करुण विनय है।

* * *

आशा



इस विश्व कोलाहल में जिससे मैं ऊब गया हूँ कोई मेरी कहानी सुन सकेगा ?

मेरी आकांक्षायें, मेरी अभिलाषायें पूरी हो सकेंगी ?

जीवन की उलझनों से मैं शान्ति पा सकूँगा ऐसा मुझे विश्वास नहीं ।

मैं आँधी में तिनके की तरह ही उड़ रहा हूँ, पार होने के लिए लहरों पर ही हाथ मार रहा हूँ ।

तुम किनारे पर हाथ उठाकर मुझे इस ओर बुला रहे हो किन्तु मैं, आह ! मैं तुम्हारे आह्वान का भी स्वागत न कर सकूँगा ।

एक दिन जब सुख दुख की लहरों पर झूलते-झूलते इन स्वाँसों का यातायात रुक जायगा, तो मैं स्वयं ही तुमसे आ मिलूँगा ।

केवल मिलन की इतनी ही आशा अवशेष है ।

* * *

चिर-परिचित



म मौन हो, मैं भी मौन हूँ ।
हम अपरिचित हैं ।

उषा और संध्या से रजनी की साड़ी के दो किनारे ।

मेरे तुम्हारे बीच में अन्धकार और प्रकाश की रेखायें हैं ।

रात और दिन की खाई है, जिसको हमारी निश्वासें नहीं पाट सकतीं ।

तुम दूर हो मैं भी दूर हूँ, पर एक दूसरे को देख सकते हैं दूर बहुत दूर प्रकाश में या अन्धकार में ।

हम जगती के दो दुकूल हैं किन्तु इनका गठबन्धन न हो सकेगा ।

कोई नहीं जानता है सरिता के समानान्तर किनारों से हमारे जीवन संसार की आँखों के किस पार मिलेंगे ?

हम दुनिया से अपरिचित हैं पर एक दूसरे से चिर-परिचित ।

* * *



सरस्वती (इलेक्ट्रिक) प्रेस, मुरादाबाद.

104